जैनदर्शन में स्याद्वाद के अन्तर्गत सप्तभङ्गी न्याय

- डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

जैनदर्शन ने वस्तु को अनेकान्तात्मक स्वीकार किया है, जिससे वस्तु में परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले धर्म भी एक साथ रहते हैं – इन परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले धर्मों को क्रमशः कहने की संक्षिप्त पद्धति स्याद्वाद कहलाती है, जिसमें संक्षेप में परस्पर विरोधी धर्मों को कहनेवाले दो ही कथन होते हैं तथा इसी पद्धति को जब विस्तार से कहा जाता है तो यही स्याद्वाद पद्धति, सप्तभङ्गी के रूप में अवतरित होती है। वचन के द्वारा वस्तु की सिद्धि इन्हीं सात भंगों से होती है; जिसमें परस्पर विरोधी दो धर्मों को विस्तार से सात कथन के द्वारा समझाते हैं, इन्हें ही सप्तभङ्गी कहते हैं।

सप्तभङ्गी क्या है?

प्रश्न के वश, एक वस्तु में अविरोध से, विधि-प्रतिषेध की विकल्पना करना, सप्तभङ्गी है।

एक वस्तु में प्रश्न के वश दृष्ट और इष्ट प्रमाण से अविरुद्ध विधि और प्रतिषेधरूप विशेष विकल्पना को सप्तभङ्गी जानना चाहिए। जैसे, 1. स्यात् घट है, 2. स्यात् अघट है, 3. स्यात् घट भी है और अघट भी है, 4. स्यात् अवक्तव्य है, 5. स्यात् घट भी है और अवक्तव्य भी है, 6. स्यात् अघट भी है और अवक्तव्य भी है, 7. स्यात् घट भी है, अघट भी है और अवक्तव्य भी है।

इसप्रकार अर्पित (मुख्य) और अनर्पित (गौण) नयों की अपेक्षा से सप्तभङ्गी का निरूपण जानना चाहिए।[1]

वही तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार[2] में भी कहा है –

---

[1] **प्रश्नवशादेकस्मिन् वस्तुन्यविरोधेन विधिप्रतिषेधविकल्पना सप्तभङ्गी। एकस्मिन् वस्तुनि प्रश्नवशाद् दृष्टेनेष्टेन च प्रमाणेनाऽविरुद्धा विधिप्रतिषेधविकल्पना सप्तभङ्गी विज्ञेया। तद्यथा - स्याद् घटः, स्यादघटः, स्याद् घटश्चाऽघटश्च, स्यादवक्तव्यः स्याद् घटश्चाऽवक्तव्यश्च स्यादघटश्चाऽवक्तव्यश्च स्याद् घटश्चाऽघटश्चाऽवक्तव्यश्च इति अर्पिताऽनर्पितनयसिद्धेर्निरूपयितव्या।**

- *तत्त्वार्थराजवार्तिक, 1/6/5*

[2] **तत्र प्रश्नवशात्कश्चिद्विधौ शब्दः प्रवर्तते।**
स्यादस्त्येवाखिलं यद्वत्स्वरूपादिचतुष्टयात्॥
स्यान्नास्त्येव विपर्यायासादिति कश्चिन्निषेधने।
स्याद्वैतमेव तद्वैतादित्यस्तित्वनिषेधयोः॥
क्रमेण यौगपद्याद्वा स्यादवक्तव्यमेव तत्।
स्यादस्त्यवाच्यमेवेति यथोचित्-नयार्पणात्॥

"प्रश्न के वश अपेक्षा सहित अविरोधपूर्वक, जो शब्दों की प्रवृत्ति होती है, उसे ही सप्तभङ्गी कहते हैं; जैसे –

1. प्रत्येक वस्तु, स्वरूपादि-चतुष्टय (स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल – स्वभाव) की अपेक्षा विधिरूप **कथंचित् अस्ति-स्वरूप ही है**।

2. प्रत्येक वस्तु, इसके विपरीत अर्थात् पररूपादि-चतुष्टय (परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव) की अपेक्षा निषेधरूप **कथंचित् नास्ति-स्वरूप ही** है।

3. प्रत्येक वस्तु, क्रम से कहने की अपेक्षा विधि और निषेधरूप **कथंचित् अस्तित्व और नास्तित्व, दोनों रूप ही** है।

4. प्रत्येक वस्तु, विधि और निषेधरूप अक्रम से युगपत् कहने की अपेक्षा **कथंचित् अवक्तव्य ही** है।

5. प्रत्येक वस्तु, यथोचित नयों की योजना करने पर स्वरूपादि-चतुष्टय (स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव) की अपेक्षा विधिरूप अर्थात् अस्ति-स्वरूप; एवं अक्रमरूप युगपत् कहने की अपेक्षा कथंचित् अवक्तव्य अर्थात् **कथंचित् अस्ति-अवक्तव्य ही** है।

6. प्रत्येक वस्तु, यथोचित नयों की योजना करने पर पररूपादि-चतुष्टय (परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव) की अपेक्षा निषेधरूप अर्थात् नास्ति-स्वरूप; एवं अक्रमरूप युगपत् कहने की अपेक्षा कथंचित् अवक्तव्य अर्थात् **कथंचित् नास्ति-अवक्तव्य ही** है।

7. प्रत्येक वस्तु, यथोचित नयों की योजना करने पर स्वरूपादि-चतुष्टय (स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव) की अपेक्षा विधिरूप अर्थात् अस्ति-स्वरूप; पररूपादि-चतुष्टय (परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव) की अपेक्षा निषेधरूप अर्थात् नास्ति-स्वरूप; एवं अक्रमरूप युगपत् कहने की अपेक्षा कथंचित् अवक्तव्य अर्थात् **कथंचित् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य ही** है।"

इसप्रकार अर्पित (मुख्य) और अनर्पित (गौण) नयों की अपेक्षा से सप्तभङ्गी का निरूपण करना चाहिए।

सप्तभङ्गी क्यों?

प्रश्नकार के प्रश्नवश अनेकान्तस्वरूप वस्तु के प्रतिपादन में सात ही भङ्ग होते हैं और ये प्रश्न न तो, सात से हीन या अधिक हो सकते हैं और न ये भङ्ग ही। उदाहरणार्थ – 1. जीव चेतनस्वरूप ही है; 2. शरीरस्वरूप बिलकुल

स्यान्नास्त्यवाच्यमेवेति तत एव निगद्यते।
स्याद्वयावाच्यमेवेति सप्तभङ्ग्यविरोधतः॥

- *तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, 1/6/49-52*

नहीं; 3. क्योंकि स्वलक्षणरूप अस्तित्व, पर की निवृत्ति के बिना और पर की निवृत्ति, स्वलक्षण के अस्तित्व के बिना हो ही नहीं सकती; 4. पृथक्-पृथक् या क्रम से कहे गये स्व से अस्तित्व और पर से नास्तित्वरूप दोनों धर्म, वस्तु में युगपत् सिद्ध होने से वे एकसाथ अवक्तव्य हैं; 5. अवक्तव्य होते हुए भी वह स्व-स्वरूप से सत् है; 6. इसी प्रकार अवक्तव्य होते हुए भी वह सदा पर से व्यावृत्त ही है; 7. अत: वह अस्तित्व, नास्तित्व व अवक्तव्य – इन तीन धर्मों के अभेदस्वरूप है।

इस अवक्तव्य को वक्तव्य बनाने के लिए इन सात बातों का क्रम से कथन करते हुए प्रत्येक वाक्य के साथ कथञ्चित् सूचक 'स्यात्' शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसके कारण अनुक्त होने पर भी शेष छह बातों का और साथ ही प्रत्येक अपेक्षा के अवधारणार्थ एवकार का भी संग्रह हो जाता है। 'स्यात्' शब्द सहित कथन होने के कारण यह कथन-पद्धति ही **स्याद्वाद** कहलाती है।[3]

अत्यन्त संक्षेप में स्याद्वादी का एक-एक कथन, स्याद्वाद के अन्तर्गत आता है; उसका एक-एक नय भी स्वयं स्याद्वादस्वरूप है तथा विस्तार से स्याद्वाद के असंख्य भङ्ग भी हो सकते हैं और किसी अपेक्षा अनन्त भङ्ग भी हो सकते हैं।

आचार्य अमृतचन्द्र ने प्रवचनसार परिशिष्ट में न तो अतिसंक्षिप्त और न ही अतिविस्तृत अर्थात् 47 नयों का कथन किया है, जिसमें परस्पर-विरुद्ध प्रतीत होनेवाले अस्तित्व-नास्तित्व धर्म पर आधारित सप्तभङ्गी का समावेश, तीसरे से नौवें नय तक 1. अस्तित्वनय, 2. नास्तित्वनय, 3. अस्तित्व-नास्तित्वनय, 4. अवक्तव्यनय, 5. अस्तित्व – अवक्तव्यनय, 6. नास्तित्व-अवक्तव्यनय और 7. अस्तित्व-नास्तित्व – अवक्तव्यनय – ऐसे सात नय के रूप में किया है।

इसी प्रकार वहाँ उन्होंने परस्पर-विरुद्ध प्रतीत होनेवाले धर्मों पर आधारित नयों की भी अनेक जोड़ियाँ बनायी हैं; जैसे, द्रव्यनय-पर्यायनय, नित्यनय-अनित्यनय आदि; उनमें भी प्रत्येक जोड़ी की सप्तभङ्गी बन सकती है।

जैसे, प्रथम जोड़ी, द्रव्यनय-पर्यायनय की है, इसे सप्तभङ्गी के रूप में विस्तारित करने पर 1. द्रव्यनय, 2. पर्यायनय, 3. द्रव्य-पर्याय नय, 4. अवक्तव्यनय, 5. द्रव्य-अवक्तव्यनय, 6. पर्याय-वक्तव्यनय और 7. द्रव्य-पर्याय-अवक्तव्यनय – ऐसे सप्तभङ्गी हो सकती है।

---

[3] *देखें, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, 4/313*

इस प्रकार अस्तित्वनय-नास्तित्वनय की एक सप्तभङ्गी के अलावा वहाँ 20 जोड़ियाँ और भी हैं, उन सबकी सप्तभङ्गी बनाने पर 21 & 7 = 147 अर्थात् कुल 147 नय हो जाते हैं; अत: हम कह सकते हैं कि 47 नयों का विस्तार करने पर 147 नय बन जाते हैं।

सप्तभङ्गी की आवश्यकता

सात भङ्गों में एकाङ्गी भङ्ग तीन हैं – अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य; शेष चार भङ्ग इन्हीं तीन के आश्रित संयोगी भङ्ग हैं।[4]

संयोगी भङ्गों में तीन भङ्ग द्वि-संयोगी हैं और एक अन्तिम भङ्ग त्रि-संयोगी है। अस्ति की नास्ति के साथ; अस्ति की अवक्तव्य के साथ और नास्ति की अवक्तव्य के साथ जोड़ी बनाने पर द्वि-संयोगी भङ्ग बनते हैं तथा अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य; इन तीनों को मिला कर त्रि-संयोगी भङ्ग बन जाता है।

सप्तभङ्गी में तीसरे-चौथे भङ्ग के क्रम के सन्दर्भ में आचार्यों के मतभेद हैं –

जहाँ कषायपाहुड़, धवला[5] आदि के अनुसार तीसरा भङ्ग 'स्याद् अवक्तव्य' है और चौथा भङ्ग 'स्यादस्ति च नास्ति च' है; वहीं आचार्य कुन्दकुन्द[6] आचार्य अमृतचन्द्र[7] आचार्य विद्यानन्द[8] आदि के अनुसार तीसरा भङ्ग 'स्यादस्ति च नास्ति च' है और चौथा भङ्ग 'स्यादवक्तव्य' है। आचार्य अकलङ्क ने तत्त्वार्थ राजवार्तिक में ही अलग-अलग स्थलों पर दोनों क्रमों का समर्थन किया है। जहाँ पहले अध्याय में तीसरे-चौथे भङ्ग का क्रम 'स्यात् उभय' और 'स्यात् अवक्तव्य' माना है तो चौथे अध्याय में 'स्यात् अवक्तव्य' और 'स्यात् अस्ति च नास्ति च' माना है।[9]

इसमें भी हम प्रथम श्रुतस्कन्ध और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के आचार्यों की प्रतिपादन शैली के अन्तर को समझ सकते हैं; परन्तु इस अन्तर से बहुत फर्क नहीं पड़ता है; क्योंकि मूल भङ्ग सिर्फ दो हैं, उन्हीं दो भङ्गों के संयोग से शेष भङ्गों की निर्मिति/उत्पत्ति हुई है।[10]

---

[4] *स्याद्वादमञ्जरी, 24/289*

[5] *कषायपाहुड़, 1/170, धवला 9/183*

[6] *प्रवचनसार 115 एवं पञ्चास्तिकाय 14*

[7] *तत्त्वप्रदीपिका, परिशिष्ट, 47 नय, 3-7*

[8] *श्लोकवार्तिक, 1/6/50-51*

[9] *तत्त्वार्थराजवार्तिक, 1/6/5-6*

[10] *तत्त्वार्थराजवार्तिक, 4/42/14*

इन्हीं दो भङ्गों को जब क्रम से कहा जाता है तो 'अस्ति-नास्ति' नामक तृतीय भङ्ग और जब युगपत् कहने की कोशिश की जाती है तो 'अवक्तव्य' नामक चतुर्थ भङ्ग बनता है। अब यदि इसे ही विपरीत क्रम में बनाया जाता है अर्थात् इन्हीं दो भङ्गों को जब युगपत् कहने की कोशिश की जाती है तो 'अवक्तव्य' नामक तृतीय भङ्ग और जब क्रम से कहा जाता है तो 'अस्ति-नास्ति' नामक चतुर्थ भङ्ग बनता है।

वास्तव में अनेकान्तस्वरूप प्रत्येक वस्तु में परस्पर विरुद्ध अनन्त धर्मयुगल पाये जाते हैं; इन्हीं धर्मयुगलों का वर्णन कैसे किया जाए – इस विवेचन में स्याद्वाद और सप्तभङ्गी का निर्माण हुआ है। सामान्य-रूप से हम इन धर्मयुगलों को अस्ति-नास्ति, नित्य-अनित्य, भेद-अभेद आदि रूपों में वर्णित करते हैं। यहीं से, दो भङ्गों से प्रारम्भ होकर सप्तभङ्गी तक की योजना बन जाती है अर्थात् इन दो धर्मयुगलों को अलग-अलग कहने पर दो भङ्ग बनते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि वस्तु में तो वे धर्मयुगल युगपत् होते हैं तो उन धर्मयुगलों में पहले किसको कहा जाए, जिसको भी पहले कहेंगे, यह आपत्ति रहेगी, उसे पहले क्यों कहा? क्या वह कोई विशेष है? दूसरे को बाद में क्यों कहा? क्या वह कुछ कम है? इत्यादि प्रश्नों की झड़ी लग जाएगी तो तीसरा भङ्ग यह बन जाता है कि चलो, हम दोनों को अलग-अलग नहीं कहते, एक साथ कहते हैं; जैसे, 'स्यात् अस्ति-नास्ति'। लेकिन प्रश्न तो यहाँ भी खड़ा ही रहा कि इस तीसरे भङ्ग में भी आपने एक साथ कहाँ कहा? आपने यहाँ भी अस्ति को पहले और नास्ति को बाद में कहा? बात तो एक साथ कहने की है। इससे ही चतुर्थ भङ्ग की भूमिका बन जाती है कि 'हम उन दोनों भङ्गों को एक साथ या युगपत् नहीं कह सकते' – इसी का नाम तो 'स्यात् अवक्तव्य' है, यही चतुर्थ भङ्ग है।

इसी बात को विपरीत क्रम में भी रखा जा सकता है –

अर्थात् वस्तु में तो वे धर्मयुगल युगपत् होते हैं तो उन धर्मयुगलों में पहले किसको कहा जाए? जिसको भी पहले कहेंगे, उसमें यह आपत्ति तो रहेगी कि उसे पहले क्यों कहा? क्या वह कोई विशेष है? दूसरे को बाद में क्यों कहा? क्या वह कुछ कम है? इत्यादि प्रश्नों की झड़ी लगने पर दूसरी परम्परा के अनुसार तीसरा भङ्ग यह बन जाएगा कि 'हम उन दोनों भङ्गों को एक साथ या युगपत् नहीं कह सकते' – इसी का नाम तो 'स्यात् अवक्तव्य' है, यही तृतीय भङ्ग है। परन्तु चलो, हम दोनों को युगपत् नहीं कह सकते, क्रम से तो कह ही सकते हैं; जैसे, 'स्यात् अस्ति-नास्ति' – इसे ही दूसरी परम्परा में चतुर्थ भङ्ग कहा गया है।

अब फिर प्रश्न होगा कि यह क्या, आपने तो सीधा 'अवक्तव्य' ही कह दिया कि क्या अवक्तव्य के होते हुए भी उसे अपने स्वरूपादि चतुष्टय की अपेक्षा सत् या अस्ति-स्वरूप नहीं कह सकते? तो इस प्रश्न का उत्तर पंचम भङ्ग – 'स्यात् अस्ति-अवक्तव्य' के रूप में मिलता है।

इसी प्रकार यह भी प्रश्न बनता है कि क्या वस्तु को अवक्तव्य होते हुए भी पररूपादि चतुष्टय की अपेक्षा असत् या नास्ति-स्वरूप नहीं कह सकते? तो इस प्रश्न का उत्तर षष्ठ भङ्ग – 'स्यात् नास्ति-अवक्तव्य' के रूप में मिलता है।

अब, अन्तिम प्रश्न यह बनता है कि क्या वस्तु को युगपत् अवक्तव्य होते हुए उन्हें स्व-पररूपादि चतुष्टय की अपेक्षा क्रम से सत्-असत् या अस्ति-नास्ति-स्वरूप नहीं कह सकते? तो इस प्रश्न का उत्तर सप्तम भङ्ग – 'स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य' के रूप में मिलता है।

अधिकांशतया सप्तभङ्गी के पाँचवें, छठवें और सातवें भङ्ग की चर्चा संक्षेप में ही की जाती है, लेकिन आचार्य अकलङ्क ने इन भङ्गों की चर्चा भी कुछ विस्तार के साथ की है; वह इस प्रकार है –

"पाँचवाँ भङ्ग, तीन स्वरूपों (तीन एकांगी भंगों) में से द्वयात्मक (अर्थात् एक 'अस्ति' और दूसरा 'अवक्तव्य') होता है। अनेक-द्रव्यात्मक और अनेक-पर्यायात्मक जीव के किसी द्रव्यार्थ-विशेष या पर्यायार्थ-विशेष की विवक्षा में एक आत्मा (स्वभाव) 'अस्ति' है, वही अन्य-विवक्षा से द्रव्यसामान्य-पर्यायसामान्य या उनके द्रव्यविशेष-पर्यायविशेष दोनों की युगपद् अविभाग-विवक्षा में वचनों के अगोचर होकर 'अवक्तव्य' है। जैसे, आत्मद्रव्यत्व जीवत्व या मनुष्यत्वरूप से 'अस्ति' है तथा द्रव्य-पर्याय-सामान्य एवं तद्भाव की युगपत् विवक्षा में 'अवक्तव्य' है। इस तरह 'स्यादस्ति-अवक्तव्य' भङ्ग बनता है।[11]

छठा भङ्ग भी तीन स्वरूपों (तीन एकांगी भंगों) में से दो अंशवाला होता है। वस्तुगत 'नास्तित्व' ही जब 'अवक्तव्य' से अनुबद्ध होकर विवक्षित होता है, तब यह भङ्ग बनता है। नास्तित्व पर्याय की दृष्टि से है। पर्यायें दो प्रकार की हैं – एक सहभाविनी और दूसरी क्रमभाविनी। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय आदि सहभाविनी तथा क्रोध, मान, बाल्य, यौवन आदि क्रमभाविनी पर्यायें हैं। गत्यादि और क्रोधादि पर्यायों से भिन्न

---

[11] **पञ्चमो भङ्ग उच्यते - त्रिभिः आत्मभिर्द्वयंशः। जीवस्यानेकद्रव्यात्मकस्याऽनेक-पर्यायात्मकस्य च किञ्चिद् द्रव्यार्थविशेषं पर्यायार्थविशेषं वा आश्रित्यास्तीत्युच्यते एक आत्मा, तस्यैवाऽन्य आत्मा द्रव्यसामान्यं पर्यायसामान्यं तद्विशेषद्वयं वाऽङ्गीकृत्य युगपदविभाग-विवक्षायां वचनगोचरातीतः। यथा स्यादस्त्यात्मा द्रव्यत्वेन द्रव्यविशेषेण वा जीवत्वेन, मनुष्यत्वादिना वा। द्रव्य-पर्यायसामान्यमुररीकृत्य वस्तुत्वसत्त्वमवस्तुत्वासत्त्वं च युगपद्-भेदविवक्षायामवाच्यः। विशेषद्वयं वा मनुष्यत्वामनुष्यत्वादि, यतः सर्वेऽपि तस्यैकस्यैव ते आत्मनो विद्यन्ते तदैवेति ततः स्यादस्ति चाऽवक्तव्यश्च जीवः।**

- *तत्त्वार्थराजवार्तिक, 4/42/15*

कोई एक अवस्थायी जीवद्रव्य नहीं है, किन्तु ये ही पर्यायें जीव कही जाती है; इस प्रकार कल्पना करने पर 'नास्तित्व' है। जो वस्तुत्व से 'सत्' है, वही द्रव्यांश है तथा जो उसके प्रतियोगी अवस्तुत्व से 'असत्' है, वही पर्यायांश है; इन दोनों की युगपत् अभेद विवक्षा में वस्तु 'अवक्तव्य' है। इस प्रकार आत्मा 'नास्ति-अवक्तव्य' है।[12]

सातवाँ भङ्ग चार स्वरूपों (प्रथम चार भंगों) में से तीन अंशवाला है। किसी द्रव्यार्थ-विशेष की अपेक्षा 'अस्तित्व', किसी पर्याय-विशेष की अपेक्षा 'नास्तित्व' होता है तथा किसी द्रव्य-पर्याय-विशेष और द्रव्य-पर्याय-सामान्य की युगपत् विवक्षा में वही 'अवक्तव्य' है। इस तरह आत्मा 'अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य' है।[13]

इसीप्रकार सप्तभङ्गी के दो प्रमुख भंगों का महत्त्व तो सर्वत्र ज्ञात हो जाता है, अत: तृतीयादि भंगों का महत्त्व[14] भी इसप्रकार समझ सकते हैं –

जैसे, घटत्व और अघटत्व, दोनों धर्मों का आधार घट ही होता है। यदि दोनों में भेद माना जाए तो घट में दोनों धर्मों के निमित्त से होने वाली बुद्धि और वचन-प्रयोग नहीं हो सकेंगे; अत: घट उभयात्मक है अर्थात् क्रम से दोनों धर्मों की विवक्षा होने पर घट, **स्यात् घट भी है और अघट भी** – यह तृतीय भंग है।

यदि उभयात्मक वस्तु को केवल घट ही कहा जाए तो दूसरे स्वरूप का संग्रह न होने से वह अतत्त्व ही हो जाएगा तथा यदि उसे केवल अघट ही कहा जाए तो घटरूप का संग्रह न होने से भी वह अतत्त्व बन जाएगा तथा कोई ऐसा शब्द है नहीं, जो युगपत् उभय स्वरूपों का प्रधानभाव से कथन कर सके, अत: युगपत् उभयविवक्षा में वस्तु **स्यात् अवक्तव्य** है – यह चतुर्थ भंग है।

---

[12] **तथा षष्ठः भङ्ग - त्रिभिः आत्मभिर्द्वयंशः। यतो वस्तुगतं नास्तित्वमवक्तव्य-रूपानुविद्धं नान्तरेणात्मभेदं शक्यं कल्पयितुं वस्तुनस्तथापि भावात्। तत्र नास्तित्वं पर्यायाश्रयम्। स च पर्यायो युगपद्-वृत्तः क्रमवृत्तो वा। सहवृत्तो जीवस्य पर्यायः अविरोधात् सहावस्थायी सहवृत्तेः गतीन्द्रियकाययोगवेदकषाय-ज्ञानसंयमादिः। क्रमवर्ती तु क्रोधादिदेवादिबाल्याद्यवस्थालक्षणः। तत्र गत्यादिव्यतिरिक्तः क्रोधादिक्रमवृत्त-धर्मरूपनैरन्तर्यमात्रादर्थान्तरभूत एकोऽवस्थितो द्रव्यार्थी जीवो नाम नास्ति, किन्तु त एवं धर्मास्तथा सन्निविष्टा जीव-व्यपदेशभाजः इति अस्यां कल्पनायां नास्तित्वम्। यश्च वस्तुत्वेन सन्निति द्रव्यार्थांशः यश्च तत्प्रतियोगिनाऽवस्तुत्वेनाऽसन्निति पर्यायांशः, ताभ्यां युगपदभेदविवक्षायामवक्तव्य इति द्वितीयोंऽशः, तस्मान्नास्ति चाऽवक्तव्यश्चाऽऽत्मा।**

- तत्त्वार्थराजवार्तिक, 4/42/15

[13] **तथा सप्तमो विकल्पः – चतुर्भिरात्मभिः त्र्यंशः। द्रव्यार्थविशेषं कञ्चिदाऽऽनित्याऽस्तित्वं पर्यायविशेषं च कञ्चिदाश्रित्य नास्तित्वमिति समुच्चितरूपं भवति, द्वयोरपि प्राधान्येन विवक्षितत्वात्। द्रव्यपर्यायविशेषेण च केनचित् द्रव्यपर्यायसामान्येन च केनचित् युगपदवक्तव्यः इति तृतीयोंऽशः। ततः स्यादस्ति च नास्ति चाऽवक्तव्यश्च आत्मा।**

- *तत्त्वार्थराजवार्तिक, 4/42/15*

[14] *और देखें, तत्त्वार्थराजवार्तिक 4/42/15*

पंचम भंग में एक तो 'अस्ति' स्वरूप अंश है और दूसरा 'अवक्तव्य' रूप अंश है, परन्तु यह अंश, युगपत् 'अस्ति और नास्ति' – इन दोनों स्वरूप है। इस प्रकार इस भंग में दो अंशों में तीन स्वरूप घटित होते हैं। जैसे, घट-स्वरूप की मुख्यता तथा उक्त युगपत् उभय धर्मों की विवक्षा होने पर घट **स्याद् घट और अवक्तव्य** है – यह पंचम भंग है।

षष्ठ भंग में एक तो 'नास्ति' स्वरूप अंश है और दूसरा 'अवक्तव्य' रूप अंश है, परन्तु यह अंश, युगपत् 'अस्ति और नास्ति' – इन दोनों स्वरूप है। इस प्रकार इस भंग में दो अंशों में तीन स्वरूप घटित होते हैं। जैसे, अघट-स्वरूप की मुख्यता तथा युगपत् उभय धर्मों की विवक्षा होने पर घट **स्यात् अघट और अवक्तव्य** है – यह षष्ठ भंग है।

सप्तम भंग में एक तो 'अस्ति' स्वरूप अंश है, दूसरा 'नास्ति' स्वरूप अंश है, और तीसरा 'अवक्तव्य' रूप अंश है, परन्तु यह अंश, युगपत् 'अस्ति और नास्ति' – इन दोनों स्वरूप है। इस प्रकार इस भंग में तीन अंशों में चार स्वरूप होते हैं। जैसे, क्रमश: उभयधर्मों की विवक्षा और युगपत् उभयधर्मों की सामूहिक विवक्षा होने पर घट **स्यात् घट, अघट और अवक्तव्य** है।[15]

जिस तरह उक्त सप्तभङ्गी प्रक्रिया घट में लगाई है, उसी तरह इसे सर्वत्र लगा लेना चाहिए।

आचार्यों का मन्तव्य है कि किसी भी वस्तु के सम्बन्ध में सात प्रकार के ही प्रश्न होते हैं, अत: सप्तभङ्गी के रूप में सात प्रकार के ही उत्तर दिये जाते हैं। आचार्य जयसेन का **प्रश्नोत्तररूपनयविभागेन**[16] यह पद ध्यान देने योग्य है।

सप्तभङ्गी के दो भेद

वहाँ सप्तभङ्गी के दो भेद किये गये हैं – प्रमाण-सप्तभङ्गी और नय-सप्तभङ्गी।

आचार्य जयसेन के अनुसार पञ्चास्तिकाय[17] में प्रमाण-सप्तभङ्गी का वर्णन है और प्रवचनसार[18] में नय-सप्तभङ्गी का वर्णन है; क्योंकि प्रमाण-सप्तभङ्गी में सात प्रमाण-वाक्यों का प्रयोग होता है, जबकि नय-सप्तभङ्गी में सात नय-वाक्यों का प्रयोग होता है।

---

15 *और देखें, तत्त्वार्थराजवार्तिक 4/42/15*

16 *तात्पर्यवृत्ति, प्रवचनसार, 115*

17 *पञ्चास्तिकायसंग्रह, 15*

18 *प्रवचनसार, 115*

यद्यपि उक्त दोनों प्रकार के सप्तभङ्गी के वाक्यों में कोई खास अन्तर भासित नहीं होता; तथापि आचार्यदेव ने उनमें अन्तर बताते हुए कहा है कि प्रमाण-वाक्य में एवकार का प्रयोग नहीं होता, जबकि नय-सप्तभङ्गी में एवकार का प्रयोग होता है अर्थात् कथञ्चित् अस्ति है, कथञ्चित् नास्ति है, कथञ्चित् अस्ति-नास्ति है ..... इत्यादि सात प्रमाण-वाक्य हैं तथा कथञ्चित् अस्ति ही है, कथञ्चित् नास्ति ही है, कथञ्चित् अस्ति-नास्ति ही है ..... इत्यादि सात नय-वाक्य हैं।

जब अपेक्षा स्पष्ट नहीं की जाती, तब एवकार का प्रयोग नहीं होता है, अत: वे **प्रमाण-वाक्य** हैं; परन्तु जब अपेक्षा स्पष्ट कर दी जाती है, तब एवकार का प्रयोग अवश्यंभावी एवं सार्थक हो जाता है, अत: वह **नय-वाक्य** है।[19] उदाहरणार्थ –

घट का क्या स्वात्मा है और क्या परात्मा?

यहाँ राजवार्तिककार ने उदाहरणार्थ, घट के **स्वात्मा** और **परात्मा** का विवेचन करते हुए कहा है –

तत्र स्वात्मना 'स्यात् घट:', परात्मना 'स्यात् अघट:'।

अर्थात् वहाँ **स्वात्मा** या अपनी अपेक्षा '**कथंचित् घट है**', **परात्मा** या पर की अपेक्षा '**कथंचित् घट नहीं है**।'

इसके बाद एक प्रश्न के माध्यम से वहाँ घट के **स्वात्मा** और **परात्मा** का स्वरूप, अनेक प्रकार से अभिव्यक्त किया है, वे वहाँ प्रारम्भ करते हुए लिखते हैं –

'को वा घटस्य स्वात्मा को वा परात्मा?'

अर्थात् घट का **स्वात्मा** क्या है और घट का **परात्मा** क्या है?

1. जिसमें घट-बुद्धि और घट-शब्द का व्यवहार हो, वह **स्वात्मा** तथा उससे भिन्न **परात्मा** है; क्योंकि स्वरूप-ग्रहण और पररूप-त्याग के द्वारा ही वस्तु का वस्तुत्व स्थिर किया जाता है। यदि पररूप की व्यावृत्ति न हो तो सभी रूपों में घट-व्यवहार हो जाएगा और यदि स्वरूप ग्रहण न हो तो नि:स्वरूपत्व का प्रसङ्ग होने से वह खरविषाण की तरह असत् हो जाएगा।

2. नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव निक्षेपों का जो आधार होता है, वह **स्वात्मा** और अन्य **परात्मा**। यदि अन्यरूप से भी घट हो जाए तो प्रति – नियत नामादि व्यवहार का ही उच्छेद हो जाएगा।

---

[19] *द्रष्टव्य, तात्पर्यवृत्ति, प्रवचनसार, 115*

3. 'घट' शब्द के वाच्य अनेक घड़ों में से विवक्षित घट का जो आकार आदि है, वह **स्वात्मा** और अन्य **परात्मा**। यदि अन्य घट के आकार से भी वह घट 'घट' हो जाए तो सभी घड़े एक घटरूप ही हो जाएँगे और इस तरह अनेकत्व-मूलक घट-सामान्य का व्यवहार ही नष्ट हो जाएगा।

4. विवक्षित घट की वर्तमान अवस्था से स्थास, कोश, कुशूल-पर्यन्त पूर्ववर्ती अवस्थाएँ एवं कपाल आदि उत्तरवर्ती अवस्थाएँ **परात्मा** हैं तथा इन पूर्वोत्तरवर्ती अवस्थाओं के मध्यक्षणवर्ती घट अवस्था ही **स्वात्मा** है, उसी **स्वात्मा**रूप अवस्था से वह घट है; क्योंकि उसी में घड़े के गुण, क्रिया आदि पाये जाते हैं, अन्य में नहीं।

यदि उन कुशूल – पर्यन्त एवं कपालादि पूर्वोत्तर अवस्थाओं में भी घड़े की उपलब्धि हो तथा घट अवस्था में उन पूर्वोत्तर अवस्थाओं की उपलब्धि होना चाहिए, परन्तु फिर तो घट की उत्पत्ति और विनाश के लिए किया जानेवाला पुरुष का प्रयत्न ही निष्फल हो जाएगा। इसी प्रकार यदि पूर्वोत्तर अवस्थाओं के समान मध्यकालवर्ती घटावस्था की अपेक्षा भी घट का अभाव माना जाए तो घटावस्था में घट के द्वारा प्राप्त होनेवाले फल का भी अभाव हो जाएगा।

5. उस मध्यकालवर्ती स्थूल घटपर्याय में भी प्रतिक्षण उपचय और अपचय होता रहता है, अत: ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से एक-क्षणवर्ती घट ही **स्वात्मा** है, अतीत और अनागत-कालीन उस घट की पर्यायें भी **परात्मा** हैं।

यदि प्रत्युत्पन्न-क्षण की तरह अतीत और अनागत क्षणों से भी घट का सत्त्व माना जाए तो सबकुछ वर्तमान क्षण मात्र ही हो जाएगा तथा अतीत और अनागत की तरह प्रत्युत्पन्न क्षण से भी घट का असत्त्व माना जाए तो जगत् से घट-व्यवहार का सर्वथा ही लोप हो जाएगा।

6. उस प्रत्युत्पन्न घट-क्षण में भी रूप, रस, गन्ध आदि अनेक गुण व पृथुबुध्नोदराकार आदि अनेक पर्यायें हैं, अत: घड़ा पृथु-बुध्नोदराकार की दृष्टि से 'है', क्योंकि घट-व्यवहार इसी आकार से होता है, अन्य से नहीं। यदि उस आकार से भी घड़ा 'न' हो तो घट का अभाव ही हो जाएगा।

7. उस आकार में भी रूप, रस आदि सभी गुणों की अवस्थाएँ हैं, परन्तु घड़े के रूप को आँख से देखकर ही घट के अस्तित्व का व्यवहार होता है; अत: इस अपेक्षा उस घट का रूप **स्वात्मा** है तथा रसादि **परात्मा**।

तथा 'मैं आँख से घड़े को देखता हूँ'; यहाँ रूप की तरह रसादि भी घट के **स्वात्मा** हों तो रसादि भी चक्षुर्ग्राह्य हो जाने से रूपात्मक हो जाएँगे, फिर अन्य इन्द्रियों की कल्पना ही निरर्थक हो जाएगी।

यदि रसादि की तरह रूप भी **स्वात्मा** न हो तो वह रूप, चक्षु के द्वारा दिखाई ही नहीं देगा।

8. शब्दभेद से अर्थभेद होता ही है, अत: 'घट' शब्द का अर्थ जुदा है तथा 'कुट' आदि शब्दों का जुदा। वहाँ घटन-क्रिया के कारण वह 'घट' है तथा कुटिल होने के कारण 'कुट'; अत: घड़ा, जिस समय घटन-क्रिया में परिणत हो, उसी समय उसे 'घट' कहना चाहिए।

इस प्रकार घट का घटन-क्रिया में कर्तारूप से उपयुक्त होने वाला स्वरूप **स्वात्मा** है और अन्य **परात्मा**। यदि इतररूप से भी घट कहा जाए तो पटादि में भी घट-व्यवहार का प्रसङ्ग प्राप्त होगा और इस तरह सभी पदार्थ एक 'घट' शब्द के वाच्य हो जाएँगे।

9. 'घट' शब्द का प्रयोग करने के बाद उत्पन्न 'घट-ज्ञानाकार' ही **स्वात्मा** है, क्योंकि वही अन्तरङ्ग और अहेय है तथा 'बाह्य घटाकार' **परात्मा** है; अत: 'घट' उपयोगाकार से है, अन्य से नहीं।

यदि उपयोगाकार से भी वह अघट हो जाए तो वचन-व्यवहार के मूलाधार उपयोग के अभाव में सभी व्यवहार भी विनष्ट हो जाएँगे।

10. चैतन्य-शक्ति के भी दो आकार होते हैं – ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार। वहाँ प्रतिबिम्ब-रहित दर्पण की तरह 'ज्ञानाकार' है और प्रतिबिम्ब-सहित दर्पण की तरह 'ज्ञेयाकार'।

इनमें ज्ञेयाकाररूप घटाकार ही **स्वात्मा** है क्योंकि घटाकार-ज्ञान से ही घट-व्यवहार होता है और उसकी अपेक्षा ज्ञानाकार भी **परात्मा** है; क्योंकि वह सर्व साधारण है अर्थात् ज्ञानाकार, सभी ज्ञेयाकारों में सामान्यरूप से व्याप्त है, उससे घट-व्यवहार नहीं होता।

यदि ज्ञानाकार होने मात्र से घट-व्यवहार माना जाए तो पटादि ज्ञान के काल में भी घट-व्यवहार होना चाहिए तथा यदि ज्ञेयाकार से भी घट न माना जाए तो घट-व्यवहार ही निराधार हो जाएगा।[20]

सप्तभङ्गी के तीन भेद

अन्य तरह से सप्तभङ्गी के तीन प्रकार बनते हैं – प्रमाण-सप्तभङ्गी, नय-सप्तभङ्गी और दुर्नय-सप्तभङ्गी।

सप्तभङ्गी के विषय को सम्पूर्णरूप से स्पष्ट करते हुए आचार्य माइल्ल धवल द्वारा रचित द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र और उसके टीकाकार पण्डित कैलाशचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री के विचार[21] द्रष्टव्य हैं –

---

[20] *तत्त्वार्थराजवार्तिक, हिन्दी सार, 1/6/5, पृ. 285*

[21] *द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, पृ. 128-131*

"सापेक्ष और निरपेक्ष सात भङ्गों का कथन जिस प्रकार होता है, उसे प्रमाण, नय और दुर्नय के भेद से युक्त सप्तभङ्ग कहते हैं –होते हैं। 'स्यात्' सापेक्ष भङ्गों को प्रमाण कहते हैं, 'नय' से युक्त भङ्गों को नय कहते हैं और 'निरपेक्ष' भङ्गों को दुर्नय कहते हैं।[22]

प्रमाण-सप्तभङ्गी और नय-सप्तभङ्गी को कहते हैं –

स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यादस्ति-अवक्तव्य, स्यात् नास्ति-अवक्तव्य और स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य – इसे **प्रमाण-सप्तभङ्गी** जानना चाहिए।

द्रव्य, स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव से अस्ति-स्वरूप है और परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव से नास्ति-स्वरूप है, स्व-परद्रव्यादि-चतुष्टय से अस्ति-नास्ति-स्वरूप है। दोनों धर्मों को एक साथ कहने की अपेक्षा अवक्तव्य है। इसी प्रकार अपने-अपने नय के साथ अर्थ की योजना करने पर अस्ति-अवक्तव्य, नास्ति-अवक्तव्य और अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य है – इसे नय-सप्तभङ्गी जानना चाहिए।[23]

चूँकि 'शब्द' एक समय में वस्तु के अनेक धर्मों का बोध नहीं करा सकता, इसलिए वक्ता किसी एक धर्म का अवलम्बन लेकर ही वचन-व्यवहार करता है। यदि वक्ता एक धर्म के द्वारा पूर्ण वस्तु का बोध कराना चाहता है तो उसका वाक्य **प्रमाण-वाक्य** कहा जाता है तथा यदि वह एक धर्म का ही बोध कराना चाहता है और शेष धर्मों के प्रति उदासीन है तो उसका वाक्य **नय-वाक्य** कहा जाता है।

अत: जैसे, प्रमाण और नय की व्यवस्था सापेक्ष है, वैसे ही प्रमाण-वाक्य और नय-वाक्य की विवक्षा भी सापेक्ष है।

---

[22] **सत्तेव हुंति भङ्गा पमाणणयदुणयभेदजुत्तादि।**
सियसावेक्खपमाणा णएण णय दुणय-णिरवेक्खा॥

\- *द्रव्यस्वभावप्रकाशकनयचक्र, 254*

[23] **अत्थित्ति णत्थि दोवि य, अव्वत्तव्वं सिएण संजुत्तं।**
अव्वत्तव्वा ते तह, पमाणभंगी सुणायव्वा॥
अत्थिसहावं दव्वं, सद्दव्वादीसु गाहियणएण।
तं पिय णत्थिसहावं, परदव्वादीहि गहिएण॥
उहयं उहय णएण, अव्वत्तव्वं च नाण समुदाए।
ते तिय अव्वत्तव्वा, णियणियणयअत्थसंजोए॥

\- *द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, 255-257*

प्रमाण-वाक्य में वस्तुगत सब धर्मों की मुख्यता रहती है और **नय-वाक्य** में जिस धर्म का उल्लेख किया जाता है, वही धर्म मुख्य होता है और शेष धर्म गौण होते हैं।

स्वामी विद्यानन्दि[24] ने युक्त्यनुशासन की टीका करते हुए बहुत अच्छी बात लिखी है –

"स्यात्कार (स्यात् पद) के बिना अनेकान्त की सिद्धि नहीं हो सकती और एवकार (ही) के बिना यथार्थ एकान्त का अवधारण नहीं हो सकता।"

'स्यादस्ति जीव:' 'जीव कथंचित् है' – इस वाक्य में सब धर्मों की प्रधानता होने से यह प्रमाणवाक्य है और स्वद्रव्यादि की अपेक्षा जीव अस्ति-स्वरूप है और परद्रव्यादि की अपेक्षा नास्ति-स्वरूप है – यह नयवाक्य है क्योंकि इसमें एक ही धर्म पर जोर दिया गया है।

नयचक्र के कर्ता ने स्यात् पद सहित वाक्य को प्रमाणवाक्य कहा है और स्यात् पद के साथ एवकार (ही) सहित वाक्य को नयवाक्य कहा है।

आचार्य जयसेन ने पञ्चास्तिकाय[25] और प्रवचनसार[26] की अपनी टीकाओं में कहा है। पञ्चास्तिकाय की टीका में उन्होंने लिखा है –

'स्यादस्ति' – यह वाक्य, सम्पूर्ण वस्तु का बोध कराता है अत: प्रमाणवाक्य है और 'स्यादस्त्येव द्रव्यम्' – यह वाक्य, वस्तु के एक धर्म का ग्राहक होने से 'नयवाक्य' है।

प्रवचनसार की टीका में उन्होंने लिखा है – पञ्चास्तिकाय में 'स्यादस्ति' इत्यादि वाक्य से **प्रमाण-सप्तभङ्गी** का कथन किया है और यहाँ 'स्यादस्त्येव' वाक्य में जो एवकार ग्रहण किया है, वह **नय-सप्तभङ्गी** को बतलाने के लिए है।

इस तरह प्रमाण और नय के भेदों से सप्तभङ्गी के भी दो भेद हो जाते हैं – प्रमाण सप्तभङ्गी और नय सप्तभङ्गी।

प्रश्नवश एक वस्तु में विरोध-रहित विधि-निषेध की विकल्पना को सप्तभङ्गी कहते हैं। चूँकि वे वाक्य सात ही होते हैं, इसलिए उन्हें **सप्तभङ्गी** कहते हैं –

---

[24] *युक्त्यनुशासन की टीका, पृष्ठ 105*

[25] *पञ्चास्तिकायसंग्रह, 15*

[26] *द्रष्टव्य, तात्पर्यवृत्ति, प्रवचनसार, 115*

1. कोई कहे कि वस्तु में विधि (**स्यात् अस्ति**) की कल्पना ही सत्य है, इसलिए केवल विधिवाक्य ही ठीक है, किन्तु ऐसी मान्यता उचित नहीं है, निषेध (नास्ति) की कल्पना भी यथार्थ है।

2. यदि कोई कहे कि निषेध-कल्पना (**स्यात् नास्ति**) ही यथार्थ है तो वह भी ठीक नहीं है क्योंकि वस्तु केवल अभावरूप ही नहीं है।

3. यदि कोई कहे कि वस्तु के अस्तित्वधर्म का कथन करने के लिए विधिवाक्य (स्यात् अस्ति) और नास्तित्वधर्म का कथन करने के लिए निषेधवाक्य (स्यात् नास्ति) – ये दो ही वाक्य उचित हैं तो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि पहले विधिवाक्य और दूसरे निषेध-वाक्य में एक-एक धर्म की ही प्रधानता है, किन्तु तीसरे वाक्य (**स्यात् अस्ति-नास्ति**) में क्रमशः दोनों ही धर्म प्रधान हैं; उसका कथन केवल विधिवाक्य या केवल निषेधवाक्य से नहीं किया जा सकता।

4. यदि कोई कहे कि उक्त तीन ही वाक्य पर्याप्त हैं तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि एक साथ दोनों धर्मों का प्रधानरूप से कथन करने की विवक्षा में चतुर्थ वाक्य (**स्यात् अवक्तव्य**) भी आवश्यक है।

5-7. अब कोई कहे कि चार ही वाक्य पर्याप्त हैं तो ऐसा भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि विधि के साथ अवक्तव्य (**स्यात् अस्ति-अवक्तव्य**), निषेध के साथ अवक्तव्य (**स्यात् नास्ति-अवक्तव्य**) और विधि-निषेध के साथ अवक्तव्य (**स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य**) को विषय करनेवाले तीन अन्य वाक्य भी आवश्यक हैं।

इस प्रकार 1. विधि कल्पना 2. निषेध कल्पना 3. क्रम से विधि-निषेध कल्पना 4. युगपत् (एक साथ) विधि-निषेध कल्पना 5. विधि कल्पना सहित युगपत् विधि-निषेध कल्पना 6. निषेध कल्पना सहित युगपत् विधि-निषेध कल्पना और 7. क्रम से विधि-निषेध कल्पना सहित युगपत् (एक साथ) विधि-निषेध कल्पना – ये सात भङ्ग होते हैं; किन्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध विधि-निषेध कल्पना का नाम **सप्तभङ्गी नहीं** है, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरोध-रहित विधि-निषेध कल्पना का नाम ही **सप्तभङ्गी है**।

ध्यान रहे कि अनेक वस्तुओं में पाये जानेवाले धर्मों को लेकर सप्तभङ्गी प्रवर्तित नहीं होती, किन्तु एक ही वस्तु के परस्पर विरुद्ध धर्मों को लेकर सप्तभङ्गी प्रवर्तित होती है। एक वस्तु में पाये जानेवाले अनन्त परस्पर विरोधी धर्म-युगलों को लेकर एक ही वस्तु में अनन्त सप्तभङ्गियाँ भी हो सकती हैं।

चूँकि प्रश्न के प्रकार सात ही होते हैं, इसलिए भङ्ग भी सात ही होते हैं। इसीलिए सप्तभङ्गी के लक्षण में 'प्रश्नवश' यह पद रखा गया है। सात प्रकार के प्रश्नों का कारण, जिज्ञासा के सात प्रकार का होना है और

जिज्ञासा के सात प्रकारों के होने का कारण, संशय के सात प्रकार का होना है और सात प्रकार के संशय का कारण संशयविषयक वस्तु-धर्म के सात ही प्रकार का होना है।

आगे उसी को स्पष्ट करते हैं –

1-2. कथञ्चित् अस्तित्व या सत्त्व, वस्तु का धर्म है, उसके अभाव में वस्तु का ही अभाव हो जाएगा। इसी तरह कथञ्चित् असत्त्व भी वस्तु का धर्म है क्योंकि यदि स्वरूप आदि की तरह, पररूप आदि से भी वस्तु को असत् नहीं माना जाएगा तो वस्तु का कोई निश्चित स्वरूप नहीं बन सकेगा और ऐसी स्थिति में 'यह घट ही है, पट नहीं है' – ऐसा नहीं कहा जा सकेगा।

3. इसी तरह क्रम से विवक्षित अस्ति-नास्ति आदि को भी वस्तु का धर्म समझना चाहिए। जो अस्ति है, वह अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है, अन्य द्रव्यादि से नहीं। जैसे, घट पार्थिवरूप से, विवक्षित क्षेत्र से, विवक्षित काल की दृष्टि से तथा अपने भावों से है; अन्य से नहीं; अत: घट स्यादस्ति-नास्ति है। इस तरह स्वसत्ता का सद्भाव और परसत्ता के अभाव के अधीन वस्तु का स्वरूप होने से उभयात्मकता है।

भावरूपता और अभावरूपता दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। अभाव, अपने सद्भाव तथा भाव के अभाव की अपेक्षा सिद्ध होता है तथा भाव, अपने सद्भाव तथा अभाव के अभाव की अपेक्षा से सिद्ध होता है। यदि अभाव की एकान्तरूप से अस्ति स्वीकार की जाए तो जैसे अभाव की अभावरूप से अस्ति है, उसी तरह भावरूप से अस्ति हो जाने से भाव और अभाव के स्वरूप में साङ्कर्य हो जाएगा। इसी तरह यदि अभाव की सर्वथा नास्ति मानी जाए तो जैसे, उसकी भावरूप से नास्ति है, उसी तरह अभावरूप से भी नास्ति होने से अभाव का सर्वथा लोप हो जाएगा; अत: घटादि स्यादस्ति-नास्ति है। यहाँ घट में जो पटादि का नास्तित्व है, वह भी घट का ही धर्म है, उसका व्यवहार पट की अपेक्षा से होता है।

4. जब दो गुणों के द्वारा एक अखण्ड पदार्थ की एक साथ विवक्षा होती है तो चौथा अवक्तव्य भङ्ग होता है। जैसे, प्रथम और दूसरे भङ्ग में एक काल में एक शब्द से एक गुण के द्वारा समस्त वस्तु का कथन हो जाता है, उसी तरह जब दो प्रतियोगी गुणों के द्वारा अवधारणरूप से एक साथ एक काल में एक शब्द से वस्तु को कहने की इच्छा होती है तो वस्तु अवक्तव्य होती है क्योंकि वैसा कोई शब्द नहीं है।

5-7. उक्त चतुर्थ भङ्ग के साथ पहले के तीन भङ्गों की संयोजना से पाँचवाँ, छठा और सातवाँ भङ्ग निष्पन्न होता है।

आगे **दुर्नय सप्तभङ्गी** बतलाते हैं —

'स्यात्' पद तथा 'नय' निरपेक्ष वस्तु – 1. अस्ति ही है 2. नास्ति ही है 3. उभयरूप ही है 4. अवक्तव्य ही है 5. अस्ति-अवक्तव्य ही है 6. नास्ति-अवक्तव्य ही है और 7. अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य ही है – इसे दुर्नयभङ्गी जानना चाहिए।[27]

'स्यात्' पद के साथ प्रमाण सप्तभङ्गी और 'नय' के साथ नय सप्तभङ्गी होती है। इन दोनों ही सप्तभङ्गियों में प्रतिपक्षी धर्मों का निराकरण नहीं होता, किन्तु जिस सप्तभङ्गी में न तो 'स्यात्' पद हो और न 'नय' दृष्टि हो और इस तरह वस्तु को सर्वथा सत् या सर्वथा असत् या सर्वथा अवक्तव्य आदिरूप कहा जाता हो, वह **दुर्नय सप्तभङ्गी** है। वस्तु में अनेकान्त के ज्ञान को प्रमाण, वस्तु में एक धर्म के जानने को नय और अन्य धर्मों का निराकरण करनेवाले ज्ञान को दुर्नय कहते हैं; अत: दुर्नय की तरह **दुर्नय सप्तभङ्गी** भी त्याज्य है।[28]

प्रमाण-सप्तभङ्गी और नय-सप्तभङ्गी में अन्तर

प्रमाण-सप्तभङ्गी और नय-सप्तभङ्गी के अन्तर को स्पष्ट करने वाले निम्न आगम-वचन ध्यान देने योग्य हैं –

1. नय वाक्यों में 'स्यात्' शब्द लगाकर बोलने को **प्रमाण** कहते हैं।[29]

2. किसी वस्तु में अपने इष्ट धर्म को सिद्ध करते हुए, अन्य धर्मों के प्रति उदासीन होकर वस्तु का विवेचन करने को **नय** कहते हैं। जैसे, 'यह घट है'। नय में दुर्नय की तरह एक धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का निषेध नहीं किया जाता, इसलिए नय को दुर्नय नहीं कहा जा सकता तथा नय एकान्त को विषय करने वाला होने से इसे प्रमाण भी नहीं कह सकते।

वस्तु के नाना दृष्टियों की अपेक्षा कथञ्चित् सत्-रूप विवेचन करने को **प्रमाण** कहते हैं, जैसे 'घट कथञ्चित् सत् है'। प्रत्यक्ष और अनुमान से अबाधित होने से और विपक्ष का बाधक होने से इसे **प्रमाण** कहते हैं। प्रत्येक वस्तु, अपने स्वभाव से सत् और अन्य स्वभाव से असत् है, यह पहले कहा जा चुका है। यहाँ वस्तु के एक सत्-असत्

---

[27] **अत्थेव णत्थि उहयं, अव्वत्तव्वं तहेव पुण तिदयं।**
तह सिय णय णिरवेक्खं, जाणसु दव्वे दुणयभंगी॥

- द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, 258

[28] *द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, पृ. 128-131*

[29] **स्याच्छब्दलाञ्छितानां नयानामेव प्रमाणव्यपदेशभाक्त्वात्।**

- स्याद्वादमञ्जरी 28/321

धर्म को कहा गया है। इसी प्रकार नित्य-अनित्य, वक्तव्य-अवक्तव्य, सामान्य-विशेष आदि अनेक धर्म समझने चाहिए।[30]

'द्रव्य कथञ्चित् है' – ऐसा कहने पर **प्रमाण सप्तभङ्गी** जानी जाती है क्योंकि 'कथञ्चित् है' – यह वाक्य सकल वस्तु का ग्राहक होने के कारण प्रमाण-वाक्य है। 'द्रव्य कथञ्चित् है ही' – ऐसा कहने पर यह वस्तु का एकदेश ग्राहक होने से **नय-वाक्य** है।[31]

शंका – यहाँ यह विचारणीय है कि नय-वाक्य या नय-सप्तभङ्गी में 'स्यात्' शब्द का प्रयोग होता है या नहीं क्योंकि आगम में नय-प्रयोग के साथ भी कहीं-कहीं पर 'स्यात्' शब्द का प्रयोग किया है; अर्थात् उसे ही प्रमाण माना है, जहाँ 'स्यात्' का प्रयोग है; इसी प्रकार दुर्नयत्व का निराकरण करने के लिए, प्रामाणिकता के अर्थ में 'स्यात्' पद लगाया जाता है।[32]

कहीं-कहीं पर यह स्पष्ट लिखा है कि प्रमाण-वाक्य में 'स्यात्' शब्द का प्रयोग किया जाता है, परन्तु नयवाक्य में 'स्यात्' के साथ 'एव'कार का प्रयोग भी होता है।[33]

समाधान – इस सम्बन्ध में भी हमें यही दृष्टिकोण अपनाना चाहिए कि जब विवक्षा स्पष्ट नहीं की जाती है, परन्तु 'स्यात्' शब्द लगाकर मात्र 'किसी अपेक्षा से' – ऐसा कहकर प्रामाणिकता प्रदान की जाती है क्योंकि ऐसा वही कह सकता है, जिसे सभी विवक्षाओं का ज्ञान हो, इसी कारण यह 'स्यात्' शब्दयुक्त वाक्य, **प्रमाण-वाक्य** कहलाता है। आचार्यों ने 'स्यात्' पद को अनेकान्त का वाचक माना है। अत: इन प्रमाण-वाक्यों से मिलकर जो सप्तभङ्गी बनती है, वह **प्रमाण-सप्तभङ्गी** कहलाती है।

---

[30] **सदिति उल्लेखनात् नयः। स हि 'अस्ति घटः' इति घटे स्वाभिमतमस्तित्वधर्मं प्रसाधयन् शेषधर्मेषु गजनिमिलिकामालम्बते। न चास्य दुर्नयत्वम्। धर्मान्तरातिरस्कारात्। न च प्रमाणत्वम्। स्याच्छब्देन अलाञ्छितत्वात्। स्यात्सदिति 'स्यात् कथंचित् सद् वस्तु' इति प्रमाणम्। प्रमाणत्वं चास्य दृष्टेष्टाबाधितत्वाद् विपक्षे बाधकसद्भावाच्च। सर्वं हि वस्तु स्वरूपेण सत्, पररूपेण चासद् इति असकृदुक्तम्। सदिति दिङ्मात्रदर्शनार्थम् अनया दिशा असत्त्वनित्यत्वानित्यत्ववक्तव्यत्वावक्तव्यत्व-सामान्यविशेषादि अपि बोद्धव्यम्।**

– *स्याद्वादमञ्जरी, 28/308*

[31] **स्यादस्ति द्रव्यमिति पठनेन वचनेन प्रमाणसप्तभङ्गी ज्ञायते। कथमिति चेत्। स्यादस्तीति सकलवस्तुग्राहकत्वात्प्रमाणवाक्यं स्यादस्त्येव द्रव्यमिति वस्त्वेकदेश-ग्राहकत्वान्नयवाक्यम्।**

– *तात्पर्यवृत्ति, पञ्चास्तिकायसंग्रह, 15*

[32] ~~**स्याच्छब्दलाञ्छितानां नयानामेव प्रमाणव्यपदेशभाक्त्वात्**~~

~~*स्याद्वादमञ्जरी 28/321*~~

[33] *द्रष्टव्य, तात्पर्यवृत्ति, प्रवचनसार, 115*

परन्तु जब 'स्यात्' पद के स्थान पर वह नय-विवक्षा स्पष्ट कर दी जाती है; जैसे, वस्तु द्रव्यार्थिकनय से नित्य है आदि; तो 'स्यात्' पद लगाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अपेक्षा बता दी गई है, तथापि कभी-कभी वक्ता नय-प्रयोग करते हुए भी अपेक्षा स्पष्ट नहीं करते तो उन्हें 'स्यात्' पद भी लगाना आवश्यक होता है। लेकिन फिर वे नय-प्रयोग बताने की दृष्टि से 'एव'कार का प्रयोग करते हैं; अत: इन नय-वाक्यों से मिलकर जो सप्तभङ्गी बनती है, वह **नय-सप्तभङ्गी** कहलाती है।

तथा जहाँ 'स्यात्' पद का प्रयोग भी नहीं हो, नयविवक्षा भी ज्ञात नहीं हो और 'एव' कार का प्रयोग किया जा रहा हो; वहाँ स्पष्टत: मिथ्या या सर्वथा एकान्त का प्रयोग होने से दुर्नय-वाक्य बन जाता है; अत: इन दुर्नय-वाक्यों से मिलकर जो सप्तभङ्गी बनती है, वह **दुर्नय-सप्तभङ्गी** कहलाती है।

सकलादेश और विकलादेश

प्रमाण-सप्तभङ्गी और नय-सप्तभङ्गी के प्रसङ्ग में प्रमाण और नय को संक्षेप में जानना आवश्यक है। आचार्य अकलङ्क ने प्रमाण में यौगपद्य और नय में क्रम स्वीकार किया है। इसी प्रकार प्रमाण को सकलादेश और नय को विकलादेश माना है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में कहा है –

"अनेकान्तात्मक वस्तु का कथन शब्दों के माध्यम से दो रूपों में होता है – एक क्रमिक और दूसरा यौगपद्य। तीसरा कोई प्रकार नहीं है। जब अस्तित्व आदि अनेक धर्म, कालादि की अपेक्षा (भेदविवक्षा में) भिन्न-भिन्न विवक्षित होते हैं; उस समय एक शब्द में अनेक अर्थों के प्रतिपादन करने की शक्ति न होने से क्रम से प्रतिपादन होता है, इसे **विकलादेश** कहते हैं।

लेकिन जब उन्हीं अस्तित्वादि धर्मों की कालादि की दृष्टि से अभेदविवक्षा होती है तब एक शब्द के द्वारा एक धर्म की मुख्यता करने पर भी तादात्म्यरूप से एकत्व को प्राप्त सभी धर्मों का अखण्ड भाव से युगपत् कथन हो जाता है – यह **सकलादेश** कहलाता है।

विकलादेश नयरूप है और **सकलादेश** प्रमाणरूप। कहा है – **सकलादेश: प्रमाणाधीन:, विकलादेश: नयाधीन:**।[34]"

---

[34] **तस्य शब्देनाऽभिधानं क्रमयौगपद्याभ्याम्॥ 12॥ तस्यैकस्य जीवस्याऽनेकात्मकस्य प्रत्यायने शब्दः प्रवर्तमानो द्वेधा व्यवतिष्ठते क्रमेण यौगपद्येन वा, न तृतीयो वाक्पथोऽस्ति। ते च कालादिभिर्भेदाभेदार्पणात्॥13॥ ते च क्रमयौगपद्ये कालादिभिः भेदाऽभेदाऽर्पणाद्भवतः। यदा वक्ष्यमाणैः कालादिभिरस्तित्वादीनां धर्माणां भेदेन विवक्षा तदैकस्य शब्दस्याऽनेकार्थप्रत्यायन-शक्त्यभावात् क्रमः। यदा तु तेषामेव धर्माणां कालादिभिरभेदेन वृत्तमात्मरूपमुच्यते तदैकेनापि शब्देन एकधर्मप्रत्यायनमुखेन तदात्मकत्वमापन्नस्याऽनेकाऽशेषरूपस्य प्रतिपादन-**

शंका – सकलादेश क्या है?

समाधान – एक गुणरूप से सम्पूर्ण वस्तु-धर्मों का अखण्डभाव से ग्रहण करना, सकलादेश है। जिस समय एक अभिन्न वस्तु अखण्डरूप से विवक्षित होती है, उस समय उन अस्तित्वादि धर्मों का अभेदवृत्ति या अभेदोपचार करके, सम्पूर्ण वस्तु को एक शब्द से कहते हैं – यही **सकलादेश** है।

द्रव्यार्थिकनय से धर्मों में **अभेदवृत्ति** होती है तथा पर्यायार्थिकनय से भेद होने पर भी जब उपचार से उनमें अभेद स्थापित करते हैं तो **अभेदोपचार** कहलाता है।

सकलादेश में सप्तभङ्गी – इस सकलादेश के अन्तर्गत भी आदेशवश प्रत्येक धर्मयुगल में **सप्तभङ्गी** होती है –

1. स्यात् अस्त्येव जीव: 2. स्यात् नास्त्येव जीव: 3. स्यात् अवक्तव्य एव जीव: 4. स्यात् अस्ति च नास्ति च 5. स्यात् अस्ति च अवक्तव्यश्च 6. स्यात् नास्ति च अवक्तव्यश्च 7. स्यात् अस्ति नास्ति च अवक्तव्यश्च।[35]

राजवार्तिक में ही आगे विस्तार करते हुए कहा है –

यहाँ 'स्यात् अस्त्येव जीव:' – इस वाक्य में **'जीव' शब्द विशेष्य होने से द्रव्यवाची** है और **'अस्ति' शब्द विशेषण होने से गुणवाची** है। इन दोनों में सामान्य अर्थ की अभिन्नता होने से विशेषण-विशेष्यभाव का द्योतन करने के लिए 'एव' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस 'एव' शब्द से इतर धर्मों की निवृत्ति का प्रसंग आता है; अत: उन नास्ति आदि इतर धर्मों के सद्भाव का द्योतन करने के लिए 'स्यात्' शब्द का प्रयोग किया गया है ..... इस 'स्यात्' शब्द के अनेकान्त, विधि, विचार आदि अनेक अर्थ हैं; उनमें से विवक्षावश यहाँ 'अनेकान्त' अर्थ लिया गया है।

संभवात् यौगपद्यम् तत्र यदा यौगपद्यं तदा सकलादेशः, स एव प्रमाणमित्युच्यते। 'सकलादेश: प्रमाणाधीनः' इति वचनात्। यदा तु क्रमः तदा विकलादेशः, स एव नय इति व्यपदिश्यते। 'विकलादेशो नयाधीनः' इति वचनात्।

- *तत्त्वार्थराजवार्तिक 4/42/12-13*

[35] **कथं सकलादेश:?**
एकगुणमुखेनाऽशेषवस्तुरूपसंग्रहात् सकलादेश: ॥14॥ यदा अभिन्नमेकं वस्तु एकगुणरूपेण उच्यते गुणिनां गुणरूपमन्तरेण विशेष-प्रतिपत्तेरसंभवात्। एको हि जीवोऽस्तित्वादिष्वेकस्य गुणस्य रूपेणाऽभेदवृत्त्या अभेदोपचारेण वा निरंशः समस्तो वक्तुमिष्यते, विभाग-निमित्तस्य प्रतियोगिनो गुणान्तराय तत्राऽनाश्रयणात्, तदा सकलादेशः। कथमभेदवृत्तिः कथं वा अभेदोपचारः? द्रव्यार्थत्वेनाऽऽश्रयणे तदव्यतिरेकादभेदवृत्तिः पर्यायार्थत्वेनाऽऽश्रयणे परस्परव्यतिरेकेऽपि एकत्वाऽध्यारोपः, ततश्चाऽभेदोपचारः।
तत्राऽऽदेशवशात् सप्तभङ्गी प्रतिपदम् ॥15॥ तत्रैतस्मिन् सकलादेश आदेशवशात् सप्तभङ्गी प्रतिपदं वेदितव्या। तद्यथा स्यादस्त्येव जीवः, स्यान्नास्त्येव जीवः, स्यादवक्तव्य एव जीवः, स्यादस्ति च नास्ति च स्यादस्ति चाऽवक्तव्यश्च, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च इत्यादि।

- *तत्त्वार्थराजवार्तिक 4/42/13-15*

शंका – यदि 'स्यात्' शब्द अनेकान्त का द्योतक है तो सर्व अर्थों का इसी के द्वारा ग्रहण हो जाने से इतर नास्ति आदि पदों का ग्रहण करना व्यर्थ हो जाता है?

समाधान – यद्यपि **'स्यात्' शब्द से सामान्यतया अनेकान्त का द्योतन** तो हो जाता है, फिर भी विशेषार्थी को विशेष शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। जैसे, वृक्ष कहने से सामान्यतया धव, पलाश आदि सर्व वृक्षों का ग्रहण हो जाने पर भी धव, पलाश आदि के इच्छुक उन-उन शब्दों का भी प्रयोग करते ही हैं; उसी प्रकार 'स्यात्' शब्द के द्वारा अनेकधर्मात्मक पदार्थों का ज्ञान हो जाने पर भी अस्ति, नास्ति आदि विशेषरूप पदार्थों को जानने के लिए अस्ति, नास्ति आदि विशेष पदों का उल्लेख करना भी उपयुक्त ही है।

शंका – यदि 'स्यात् अस्त्येव जीव:' – यह वाक्य सकलादेशी है तो इसी में जीवद्रव्यगत नास्ति आदि सभी धर्मों का संग्रह हो ही जाता है, तो फिर 'स्यान्नास्त्येव जीव:', 'स्यादवक्तव्य एव जीव:' इत्यादि सर्व भंगों का ग्रहण निरर्थक है?

समाधान – गौण और प्रधान व्यवस्था-विशेष का प्रतिपादन करने के लिए सर्व भंगों का प्रयोग सार्थक होता है, निरर्थक नहीं।

जैसे, 1. द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता तथा पर्यायार्थिकनय की गौणता करके कथन करने पर 'स्यात् अस्त्येव जीव:' – यह प्रथम भंग सार्थक होता है।

2. पर्यायर्थिकनय की प्रधानता और द्रव्यार्थिकनय की गौणता करके कथन करने पर 'स्यान्नास्त्येव जीव:' – यह द्वितीय भंग सार्थक होता है। ध्यान रहे कि उक्त प्रधानता, केवल शब्द से विवक्षित होने से शब्दाधीन है अर्थात् यह प्रधानता, केवल शब्दप्रयोग तक सीमित है। जो शब्द से नहीं कहा जाता है, लेकिन अर्थ से गम्य होता है, वह अप्रधान या गौण कहलाता है।

3. 'स्यात् अवक्तव्य एव जीव:' में युगपत् दोनों धर्म कहने की विवक्षा होने से दोनों ही धर्म अप्रधान हो जाते हैं क्योंकि दोनों की प्रधानता से कहने वाला कोई शब्द ही नहीं है; अत: यह तृतीय भंग भी सार्थक है।

4. 'स्यात् अस्ति च नास्ति च' में दोनों ही धर्म प्रधान हैं क्योंकि इसमें क्रमश: अस्ति और नास्ति – इन दोनों का ग्रहण हो जाता है; अत: यह चतुर्थ भंग भी सार्थक है।

5-7. इसी प्रकार शेष तीन भंगों की सार्थकता भी जानना चाहिए।[36]

शंका – विकलादेश क्या है?

समाधान – निरंश वस्तु में गुणभेद से अंश-कल्पना करना, **विकलादेश** है। स्वरूप से अविभागी अखण्ड सत्ताक वस्तु में विविध गुणों की अपेक्षा अंश-कल्पना करना अर्थात् वह एकत्व भी अनेकात्मक है – इस व्यवस्था के लिए, नरसिंह में सिंहत्व की तरह समुदायात्मक वस्तुस्वरूप को स्वीकार करके ही काल आदि की दृष्टि से परस्पर विभिन्न अंशों की कल्पना करना, **विकलादेश** है।

केवल सिंह में सिंहत्व की तरह एक में एकांश की कल्पना **विकलादेश नहीं** है। जैसे, दाडिम, कर्पूर आदि से बने हुए शर्बत में विलक्षण रस की अनुभूति और स्वीकृति के बाद अपनी पहचान शक्ति के अनुसार 'इस शर्बत में इलायची भी है, कर्पूर भी है' इत्यादि विवेचन किया जाता है उसी तरह अनेकान्तात्मक एक वस्तु की स्वीकृति के बाद हेतु-विशेष से किसी विवक्षित अंश का निश्चय करना, **विकलादेश** कहलाता है।

अखण्ड वस्तु में भी गुणों से भेद होता है। जैसे, 'गत वर्ष आप पटु थे, इस वर्ष पटुतर हैं' – इस प्रयोग में अवस्था-भेद से तदभिन्न द्रव्य में भेद-व्यवहार होता है; अत: गुणभेद से गुणिभेद का होना स्वाभाविक ही है।

विकलादेश में सप्तभङ्गी – विकलादेश के अन्तर्गत भी अपेक्षावश सप्तभङ्गी होती है –

गुणभेदक अंशों में क्रम, यौगपद्य तथा क्रम-यौगपद्य दोनों (उभय) के माध्यम से विवक्षावश **विकलादेश** होते हैं।

प्रथम और द्वितीय भङ्ग में स्वतन्त्र क्रम, तीसरे में यौगपद्य, चौथे में संयुक्त-क्रम, पाँचवें और छठे भङ्ग में स्वतन्त्र क्रम के साथ यौगपद्य तथा सातवें भङ्ग में संयुक्त-क्रम और यौगपद्य हैं।

सर्व सामान्य आदि किसी एक द्रव्यार्थ-दृष्टि से 'स्यादस्त्येव आत्मा' यह पहला विकलादेश है। इस भङ्ग में अन्य धर्म, यद्यपि वस्तु में विद्यमान हैं तो भी कालादि की अपेक्षा भेद-विवक्षा होने से उनका शब्द-वाच्यत्व स्वीकृत नहीं है, अत: न उनका विधान (कथन) ही है और न प्रतिषेध ही।

इसी तरह अन्य भङ्गों में भी स्व-विवक्षित धर्म की प्रधानता होती है और अन्य धर्मों के प्रति उदासीनता; न तो उनका विधान (कथन) ही होता है और न उनका प्रतिषेध ही।[37]

---

[36] तत्त्वार्थराजवार्तिक 4/42/13-15 (हिन्दी अनुवाद)

शंका – जब आप 'अस्त्येव' इस तरह विशेषण-विशेष्य के नियमन को 'एवकार' देते हो तो स्वयमेव ही इतर की निवृत्ति हो जाती है? उदासीनता कहाँ रही?

समाधान – यही कारण है कि शेष धर्मों के सद्भाव का द्योतन करने के लिए 'स्यात्' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे, 'स्यात् जीव है ही'।[38]"

कोई ऐसा मानते हैं कि सप्तभङ्गों में तीन एकल भङ्ग नय-वाक्य हैं और चार संयोगी भङ्ग प्रमाण-वाक्य हैं; परन्तु ऐसा नहीं है। सातों वाक्य, सकलादेश की अपेक्षा धर्मी की मुख्यता से प्रमाण-वाक्य हैं और विकलादेश की अपेक्षा धर्मों की मुख्यता से नय-वाक्य हैं – यही सिद्धान्त है, अन्यथा सिद्धान्त के साथ विरोध आता है।[39]

एकान्त-अनेकान्त की अपेक्षा सप्तभङ्गी योजना

आचार्य समन्तभद्र *(स्वयंभूस्तोत्र, 103)* और आचार्य अकलङ्क ने एकान्त-अनेकान्त को आधार बनाकर भी सप्तभङ्गी की योजना प्रस्तुत की है –

शंका – अनेकान्त में सप्तभङ्गी का अभाव होने से 'सप्तभङ्गी की योजना सर्वत्र होती है' – इस नियम का अभाव है?

---

[37] **अथ कथं विकलादेशः? निरंशस्यापि गुणभेदादंशकल्पना विकलादेशः ॥16॥ स्वेन तत्त्वेनाऽप्रविभागस्याऽपि वस्तुनो विवित्तं गणरूपं स्वरूपोपरञ्जकमपेक्ष्य प्रकल्पितमंशभेदं कृत्वाऽनेकात्मकैकत्वव्यवस्थायां नरसिंहसिंहत्ववत् समुदायात्मकमात्मरूपमभ्युपगम्य कालादिभिरन्योन्य-विषयाऽनुप्रवेशरहितांशकल्पनं विकलादेशः, न तु केवलसिंहे सिंहत्ववत् एकात्मकैकत्वपरिग्रहात्। यथा वा पानकमनेकखण्डदाडिम-कर्पूरादिरसानुविद्धमास्वाद्याऽनेकरसात्मकत्वमस्याऽवसाय पुनः स्वशक्ति-विशेषादिदमप्यस्तीदमप्यस्तीति विशेषनिरूपणं क्रियते, तथाऽनेकात्मकैकवस्त्वभ्युपगमपूर्वकं हेतुविशेषसामर्थ्यादर्पितसाध्यविशेषाऽवधारणं विकलादेशः। कथं पुनरर्थस्याभिन्नस्य गुणो भेदकः? दृष्टो हि अभिन्नस्याऽप्यर्थस्य गुणः तत्त्वभेदं कल्पयन् यथा परुत् भवान् पटुरासीत् पटुतर एषम इति गुणविवित्तरूपस्य द्रव्यस्यासंभवात् गुणभेदेन गुणिनोऽपि भेदः।**

– *तत्त्वार्थराजवार्तिक 4/42/16*

तत्रापि तथा सप्तभङ्गी ॥17॥ तत्रापि विकलादेशे तथा आदेशवशेन सप्तभङ्गी वेदितव्या। कथम्? गुणिभेदकेष्वंशेषु क्रमेण यौगपद्येन क्रम-यौगपद्याभ्यां वा विवक्षावशात् विकलादेशा भवन्ति तत्र प्रथमद्वितीययोरप्रचितः क्रमः, तृतीये यौगपद्यम्, चतुर्थे प्रचितः क्रमः, पञ्चमे षष्ठे वा अप्रचितक्रमयौगपद्ये, सप्तमे प्रचितक्रमयौगपद्ये तद्यथा सवसामान्यादिषु द्रव्यार्थादेशेषु केनचिदुपलभ्यमानत्वात् स्यादस्त्येवात्मेति प्रथमो विकलादेशः। अत्रेतरेषां वस्तुनि सतामपि कालादिभिर्भेदविवक्षातः शब्दवाच्यत्वेनाऽन्तर्भावाऽभावान्निरासाऽभावाच्च न विधिर्न प्रतिषेधः। एवं शेषभङ्गेष्वपि विवक्षितांशमात्रप्ररूपणायां इतरेष्वौदासीन्यन विकलादेशकल्पना योज्या।

– *तत्त्वार्थराजवार्तिक 4/42/17*

[38] **ननु च सामान्यार्थाविच्छेदेन विशेषणविशेष्यसम्बन्धाऽवद्योतनार्थे एवकारे सति तदवधारणादितरेषां निवृत्तिः प्राप्नोति? नैष दोषः, अत्राऽप्यत एव स्याच्छब्द-प्रयोगः कर्तव्यः 'स्यादस्त्येव जीवः' इत्यादि।**

– *तत्त्वार्थराजवार्तिक 4/42/17*

[39] **न च त्रीण्येव नयवाक्यानि चत्वार्येव प्रमाणवाक्यानि इति वक्तुं युक्तं, सिद्धान्तविरोधात्।**

– *सप्तभङ्गीतरङ्गिणी, 16*

समाधान – ऐसा नहीं है, अनेकान्त में भी सप्तभङ्गी की योजना होती है – 1. स्यात् एकान्त 2. स्यात् अनेकान्त 3. स्यात् क्रम से एकान्त और अनेकान्त 4. स्यात् एक साथ एकान्त और अनेकान्त कहने की अपेक्षा अवक्तव्य 5. स्यात् एकान्त और अवक्तव्य 6. स्यात् अनेकान्त और अवक्तव्य 7. स्यात् एकान्त, अनेकान्त और अवक्तव्य।[40]

सामान्य-विशेष की अपेक्षा सप्तभङ्गी योजना की शृंखला

सामान्य-विशेष की अपेक्षा, अनेक प्रकार से सप्तभङ्गी की योजना निम्न प्रकार करना चाहिए। यहाँ संक्षेप में मात्र दो-दो भङ्ग बताये जा रहे हैं, इन्हें सप्तभङ्गी के रूप में भी घटित करना चाहिए –

1. **सर्वसामान्य और तदभाव (तद्-अभाव) की अपेक्षा** – आत्मा की सर्वसामान्य अभेद की अपेक्षा 'अस्ति' है। यहाँ सभी प्रकार के अवान्तर भेदों की विवक्षा न रहने पर सर्वविशेष-व्यापी सन्मात्र की दृष्टि से उसमें 'अस्ति' व्यवहार होता है और उसके प्रतिपक्षी अभावसामान्य से 'नास्ति' व्यवहार होता है।

2. **विशिष्टसामान्य और तदभाव की अपेक्षा** – आत्मस्वरूप की विशिष्टसामान्य की दृष्टि से 'अस्ति' है और अनात्म-स्वरूप की दृष्टि से उसकी 'नास्ति' है।

3. **विशिष्टसामान्य और तदभावसामान्य की अपेक्षा** – आत्मा की आत्मत्व रूप से 'अस्ति' है तथा सब प्रकार से अभाव-सामान्य रूप से उसकी 'नास्ति' है।

4. **विशिष्टसामान्य और तद्विशेष की अपेक्षा** – विशिष्ट आत्म-सामान्य रूप से आत्मा की 'अस्ति' है, और विशिष्ट आत्म-विशेष 'मनुष्य' रूप से आत्मा की 'नास्ति' है।

5. **सामान्य और विशिष्टसामान्य की अपेक्षा** – अविशेष सामान्य द्रव्यत्व रूप से आत्मा, 'अस्ति' है और तत्प्रतियोगी विशिष्ट सामान्य रूप अनात्मत्व से उसकी 'नास्ति' है।

6. **द्रव्यसामान्य और गुणसामान्य की अपेक्षा** – अविशेष द्रव्यत्वरूप सामान्य से आत्मा की 'अस्ति' है तथा उसके प्रतियोगी गुणत्व सामान्य की दृष्टि से उसकी 'नास्ति' है।

---

[40] **अनेकान्ते तदभावादव्याप्तिरिति चेत्; न तत्रापि तदुपपत्तेः, स्यादेकान्तः स्यादनेकान्तः स्यादुभयः स्यादवक्तव्यः स्यादेकान्तः चाऽवक्तव्यश्च स्यादनेकान्तश्चाऽवक्तव्यश्च स्यादेकान्तश्चाऽनेकान्तः चाऽवक्तव्यश्चेति।**

– *तत्त्वार्थराजवार्तिक, 1/6/6*

7. **धर्मसमुदाय और तद्व्यतिरेक की अपेक्षा** – त्रिकालगोचर अनेक शक्तिरूप तथा ज्ञानादिरूप धर्मसमुदायरूप से आत्मा की 'अस्ति' है तथा उसके व्यतिरेकरूप से उसकी 'नास्ति' है।

8. **धर्मसामान्यसम्बन्ध और तदभाव की अपेक्षा** – ज्ञानादि गुणों के सामान्य सम्बन्ध की दृष्टि से आत्मा की 'अस्ति' है तथा किसी भी समय धर्मसामान्य सम्बन्ध का कभी अभाव नहीं होता; अत: तदभाव की दृष्टि से उसकी 'नास्ति' है।

9. **धर्मविशेषसम्बन्ध और तदभाव की अपेक्षा** – किसी विवक्षित धर्म के सम्बन्ध की दृष्टि से आत्मा की 'अस्ति' है तथा उसी के अभावरूप से उसकी 'नास्ति' है। जैसे, आत्मा की नित्यत्व या चेतनत्व आदि किसी अमुक धर्म के सम्बन्ध से 'अस्ति' है और विपक्षी धर्म से 'नास्ति' है।[41]

स्याद्वादमञ्जरी में तो सामान्य-विशेष में ही विधि-निषेध भी घटित किया है –

जिस प्रकार सत्त्व-असत्त्व की दृष्टि से सप्त भङ्ग होते हैं, उसी तरह सामान्य-विशेष की अपेक्षा से भी स्यात् सामान्य, स्यात् विशेष ..... (आदि) सात भङ्ग होते हैं।

शंका – सामान्य-विशेष की सप्तभङ्गी में विधि और निषेध धर्मों की कल्पना कैसे बन सकती है?

समाधान – इसमें विधि-निषेध धर्मों की कल्पना बन सकती है क्योंकि सामान्य विधिरूप है और विशेष व्यवच्छेदक होने से निषेध-रूप है अथवा सामान्य और विशेष, दोनों परस्पर विरुद्ध हैं, अतएव जब सामान्य की

---

[41] **सामान्य विशेष की अपेक्षा सप्तभङ्गी योजना की शृंखला**

1. सर्वसामान्येन तदभावेन च तत्र आत्मा अस्तीति सर्व-प्रकारानाऽश्रयणादिच्छावशात् कल्पितेन सर्वसामान्येन वस्तुत्वेन अस्तीति प्रथमः। तत्प्रतिपक्षेणाऽभावसामान्येनाऽवस्तुत्वेन नास्त्यात्मा इति द्वितीयः। .....

2. विशिष्टसामान्येन तदभावेन च – आत्मत्वेनैव अस्त्यात्मा इति प्रथमः। .... अनात्मत्वेनैव नास्त्यात्मा इति द्वितीयः।

3. विशिष्टसामान्येन तदभावसामान्येन च आत्मत्वेनैवाऽस्तीति प्रथमः। ..... सर्वेण प्रकारेण सामान्यतो नास्तीति द्वितीयः।

4. विशिष्टसामान्येन तद्विशेषेण च आत्मसामान्येनाऽस्त्यात्मा। आत्मविशेषेण मनुष्यत्वेन नास्ति।.....

5. सामान्येन विशिष्टसामान्येन च – अविशेषरूपेण द्रव्यत्वेन अस्त्यात्मा, विशिष्टेन सामान्येन प्रतियोगिनाऽनात्मत्वेन नाऽस्त्यात्मा।

6. द्रव्यसामान्येन गुणसामान्येन च – वस्तुनस्तथा तथा सम्भवात् तां तां विवक्षामाश्रित्याविशेषरूपेण द्रव्यत्वेनाऽस्त्यात्मा, तत्प्रतियोगिनां विशेषरूपेण गुणत्वेन नास्त्यात्मा।

7. धर्मसमुदायेन तद्व्यतिरेकेण च त्रिकालगोचराऽनेकशक्तिज्ञानादिधर्मसमुदाय-रूपेणात्माऽस्ति तद्व्यतिरेकेण नास्त्यनुपलब्धेः।

8. धर्मसामान्यसम्बन्धेन तदभावेन च गुणरूपगतसामान्यसम्बन्धविवक्षायां यस्य कस्यचित् धर्मस्याऽऽश्रयत्वेन अस्त्यात्मा। न तु कस्यचिदपि धर्मस्याऽऽश्रयो न भवतीति धर्मसामान्याऽनाश्रयत्वेन नास्त्यात्मा।

9. धर्मविशेषसम्बन्धेन तदभावेन च अनेकधर्मणोऽन्यतमधर्मसम्बन्धेन तद्विपक्षेण वा विवक्षायाम् यथा अस्त्यात्मा नित्यत्वेन निरवयवत्वेन चेतनत्वेन वा, तेषामेवाऽन्यतमधर्मप्रतिपक्षेण नाऽस्त्यात्मा।

- तत्त्वार्थराजवार्तिक, 4/42/15

प्रधानता होती है, उस समय सामान्य के विधिरूप होने से विशेष निषेधरूप कहा जाता है और जब विशेष की प्रधानता होती है, उस समय विशेष के विधिरूप होने से सामान्य निषेधरूप कहा जाता है।[42]

'स्यात्' शब्द का प्रयोजन एवं महत्त्व

आचार्य समन्तभद्र ने आप्तमीमांसा में 'स्यात्' शब्द का प्रयोजन बताते हुए लिखा है –

'हे अर्हन्! आपके तथा श्रुतकेवलियों के वाक्यों में भी प्रयुक्त होनेवाला 'स्यात्' – यह निपात या अव्यय, अनेकान्त का द्योतक माना है, अन्यथा अनेकान्त अर्थ की प्रतिपत्ति नहीं बनती है।[43]'

शंका – कोई कहता है कि 'स्यात् अस्ति' – ऐसे वचन में स्यात्कार की क्या आवश्यकता है? 'अस्ति' यह पद ही स्वयमेव पर से नास्ति का बोधक है।

समाधान – आचार्यदेव कहते हैं कि 'अस्ति' पद अपने स्वरूप का ही बोध कराएगा, पर की नास्ति का बोध नहीं करा सकता, उसका बोध कराने के लिए 'स्यात्' शब्द का प्रयोग आवश्यक है, तभी श्रोता को वह अन्य से नास्ति का बोधक होगा।

आचार्य समन्तभद्र, आप्तमीमांसा में ही कहते हैं –

'सामान्य-वचन विशेष के अर्थ का बोधक है – ऐसा कहना सत्य नहीं है क्योंकि शब्द, अपने अर्थ को छोडकर, अन्य अर्थ का बोधक नहीं होता। यदि वह अन्य अर्थ का बोधक माना जाए तो शब्द का अपना अर्थ मिथ्या होगा। अन्य अभिप्रेत विशेष अर्थ की प्राप्ति 'स्यात्कार' के द्वारा ही सम्भव है, वही उसका वास्तविक बोधक है।[44]'

---

[42] **यथा हि सदसत्त्वाभ्याम्, एवं सामान्यविशेषाभ्यामपि सप्तभङ्गयेव स्यात्, तथाहि स्यात्सामान्यम्, स्याद्विशेषं..... इति। न चात्र विधि-निषेधप्रकारौ न स्त इति वाच्यम्। सामान्यस्य विधिरूपत्वाद् विशेषस्य च व्यावृत्तिरूपतया निषेधात्मकत्वात्। अथवा प्रतिपक्षशब्दत्वाद् यदा सामान्यस्य प्राधान्यं तदा तस्य विधिरूपता, विशेषस्य च निषेधरूपता। यदा विशेषस्य पुरस्कारस्तदा तस्य विधिरूपता, इतरस्य च निषेधरूपता।**

\- *स्याद्वादमञ्जरी, 23/282*

[43] **वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रतिविशेषणम्।**
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तव केवलिनामपि॥

\- *आप्तमीमांसा, 103*

[44] **सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा।**
अभिप्रेतविशेषाप्तः स्यात्कारः सत्यलाञ्छनः॥

\- *आप्तमीमांसा, 112*

'स्यात्' शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि 'वस्तु कथंचित् कथित धर्मस्वरूप है'। तात्पर्य यह है कि 'वस्तु, उक्त धर्मस्वरूप सर्वथा नहीं है, कथंचित् अन्य धर्मस्वरूप भी है' – यह स्यात्कार के प्रयोग द्वारा ही सम्भव है।

यदि कोई वक्ता 'स्यात्' शब्द का महत्त्व और उसके स्वरूप से परिचित है तो कदाचित् वाक्य-प्रयोग करते समय या बार-बार 'स्यात्' शब्द का प्रयोग, अपनी भाषा में न करे तो भी कोई दोष नहीं है, लेकिन उसको 'स्यात्' के निषेध का अभिप्राय नहीं होना चाहिए।

धवला में कहा है –

'इन सातों ही सप्तभङ्गी वाक्यों में 'स्यात्' शब्द के प्रयोग का नियम नहीं है क्योंकि वैसी प्रतिज्ञा का आशय होने से अप्रयोग भी पाया जाता है। लेकिन ये ही वाक्य अवधारणात्मक या अन्य-व्यावृत्ति रूप होने पर दुर्नय हो जाते हैं।[45]'

---

[45] **न चैतेषु सप्तस्वपि वाक्येषु स्याच्छब्दप्रयोगनियमः, तथा –**
प्रतिज्ञाशयादप्रयोगोपलम्भात्।
सावधारणानि वाक्यानि दुर्णयाः।

\- *धवला, 9/183*